जयप्रकाश नारायण के लोकतांत्रिक विचारों के विविध आयाम

डॉ. रंजीत कुमार

+2 सहायक शिक्षक
इंटर स्तरीय विद्यालय सजौर, फतेहपुर, भागलपुर

सार : जयप्रकाश नारायण का सम्पूर्ण जीवन स्वतंत्रता, समता और सामाजिक परिवर्तन की दिशा में संघर्षरत रहा है। वे लोकतंत्र के हिमायती थे, परन्तु वे सच्चे और व्यवहारिक लोकतंत्र के हिमायती थे। किन्तु दलीय राजनीति के पक्ष में नहीं थे। वे लोकतंत्र के व्यवहारिक गुणों को धरातल पर उतरा हुआ देखना चाहते थे। वे कुलीन तंत्रात्मक शासन व्यवस्था के खिलाफ थे। जयप्रकाश नारायण का सोचना था कि लोकतंत्र की समस्या नैतिक समस्या है। संविधान, शासन प्रणाली, दल, निर्वाचन – सभी लोकतंत्र के अनिवार्य अंग हैं। किंतु जब तक लोगों में नैतिकता की भावना नहीं रहेगी, तब तक लोगों का आचार–विचार ठीक नहीं रहेगा और तब तक अच्छे संविधान और राजनीतिक प्रणाली के बावजूद लोकतंत्र ठीक से काम नहीं कर सकता। लोकतंत्र के प्रति जयप्रकाश नारायण की अवधारणा बहुत हद तक गाँधी के विचारों से अनुप्रेरित था। जयप्रकाश नारायण के लोकतांत्रिक विचार आधुनिक मुख्यधारा के विपरीत प्रतीत होते हैं। आज राजनेता जनता को विस्मृत कर अधिक से अधिक शक्ति का अर्जन करने में लिप्त रहते हैं। दलीय राजनीति में सत्ता को प्राप्त कर उस पर बने रहना ही राजनेताओं का लक्ष्य बन गया है। ऐसी स्थिति लोकतंत्र के प्रतिकूल है। इन समस्याओं के समाधान के तौर पर जयप्रकाश ने अपने लोकतंत्र के विचार जनता के समक्ष रखे। लोकतंत्र के अन्य सिद्दांतों के विपरीत जयप्रकाश का लोकतंत्र सही मायने में जनता से जुड़ने की बात करता है। जनता की सहभागिता को लोकतंत्र का आधार बना उन्होंने राष्ट्रीय एकता तथा सामाजिक और आर्थिक समानता का ऐसा प्रारूप सामने रखा जो निश्चय ही एक सामान्य संकल्प की ओर अग्रसर करता है। जयप्रकाश नारायण का लोकतांत्रिक विचारधारा के विविध आयाम ने मानवता, उनकी स्वतंत्रता एवं उनके समस्या निवारण पहलू पर विशेष जोर दिया था और यह सभी भारतीय परम्परा एवं संस्कृति के अनुरूप है न कि आयातित पश्चिमी लोकतांत्रिक विचारधारा।

शब्द कुंजी : लोकतंत्र, गाँधीवाद, साम्यवाद, समाजवाद, संपूर्ण क्रांति, जयप्रकाश नारायण।

भूमिका

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो अपने जीवन काल में ही व्यक्ति से विचार बन जाते हैं। उनकी महानता इसी तथ्य में निहित रहती है कि वे रहें या न रहें, उनकी जीवन–यात्रा इतिहास का शाश्वत प्रकाश बनकर अनंतकाल तक सृष्टि को प्रकाशित करती रहती है। वैसी ही महती विभूतियों में लोकनायक जयप्रकाश नारायण भी एक थे। उनका राजनीतिक विचारधारा इसी भाव को निहितार्थ करता है।

जयप्रकाश नारायण का सम्पूर्ण जीवन स्वतंत्रता, समता और सामाजिक परिवर्तन की दिशा में सघर्षरत रहा है। इस क्रम में उनके जीवन में अनेक उतार–चढ़ाव आये और विचारधाराओं के प्रभाव में आए और स्वयं भी उन्हें प्रभावित किया। नतीजतन, उनके सिद्धान्तों को लेकर आज भी अनेकानेक विवाद है। कई लोग यह आरोप लगाते हैं कि जयप्रकाश नारायण हमेशा गलत घोड़े की सवारी करते थे, जिस कारण वे जीवन भर विफल रहे। जयप्रकाश नारायण की आलोचना यह कहकर भी की जाती है कि वे कभी स्थिर नहीं रहे, बार–बार वे अपना रास्ता बदलते रहते थे। किसी को उनकी साम्यवादी निष्ठा में, किसी को उनकी जनतांत्रिक समाजवादी निष्ठा में और किसी को उनकी गांधीवादी निष्ठा में शंका होती है। लेकिन ऐसा आरोप लगाने वाले यह भूल जाते हैं कि जयप्रकाश नारायण का सम्पूर्ण जीवन प्रयोगमय रहा है। वे किसी खूँटे से बंधे हुए नहीं थे। उनका उद्देश्य था सत्य को जानना और अन्याय, असमानता एवं शोषण पर टिकी व्यवस्था को समाप्त कर समता पर आधारित शोषण मुक्त समाज की स्थापना करना। अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वे साम्यवाद, लोकतांत्रिक समाजवाद, गांधीवाद और संपूर्ण क्रांति जैसी कई विचारधाराओं के प्रभाव में आये। पिछड़ों, दलितों और समाज के कमजोर वर्ग के लोगों को उनका सही हक दिलाने के लिए उन्हें उस समय इनमें से जो भी रास्ता सूझा, उसे अपनाते रहे। शुरूआत में इसी कारण वे महात्मा गांधी के विरोधी थे क्योंकि गांधीवाद में उन्हें शोषण का भाव नजर आता था। जयप्रकाश नारायण न किसी वाद के घेरे में रहना चाहते थे और ना ही कोई संप्रदाय बनाना चाहते थे। समाज की परिस्थिति की जो मांग होती थी, जयप्रकाश उसी का वरण करते थे। अनेक अवसरों पर उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि चलते–चलते कभी यह अहसास हो कि वह रास्ता बंद है जिस पर वह चल रहे थे तो क्या सारा जीवन वहाँ रूका रहना चाहिए अथवा दूसरी राह तलाशनी चाहिए ? उसको रास्ता बदलना नहीं कहा जा सकता। यह एक नई राह की तलाश है।

लोकतंत्र पर जयप्रकाश नारायण के लोकतांत्रिक विचारों के विविध आयामों की विवेचना करने से पहले लोकतंत्र के मान्य सिद्धान्तों का उल्लेख करना आवश्यक है। राजनीति शास्त्र के विद्वानों ने मूलतः लोकतंत्र के चार सिद्धान्तों को माना है, जो निम्न हैं – (1) प्रक्रियात्मक लोकतंत्र, (2) विमर्शी लोकतंत्र, (3) सहभागी लोकतंत्र, और (4) उग्र लोकतंत्र। इन चार सिद्धान्तों के मूल तत्व और उनकी विशेषताएँ संक्षेप में निम्नांकित हैं –

(1) प्रक्रियात्मक लोकतंत्र : 'राजनीतिक सहभागिता' और 'राजनीतिक प्रतिस्पर्धा' प्रक्रियात्मक लोकतंत्र की दो सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रियाएँ है। इसका आशय यह है कि राजनीतिक सहभागिता के आधार पर जनता को यह शक्ति प्रदत्त है कि वे अपने शासक का चुनाव कर सकते हैं। इसके साथ राजनीतिक दल तथा उनके उम्मीदवारों में सत्ता के लिए मुक्त प्रतिस्पर्धा होती है। जोसेफ शुंप्टर के अनुसार लोकतंत्र राजनीतिक निर्णयों तक पहुँचने का वह साधन है जहाँ लोग अपने प्रतिनिधि को स्वयं चुनते हैं और बराबरी का हित प्राप्त करने का अवसर प्रदान करते हैं। व्यक्तियों तथा विविध समूहों को यहाँ राजनीतिक व्यवस्था में अर्थपूर्ण भागीदारी मिलती है।

(2) विमर्शी लोकतंत्र : विमर्शी लोकतंत्र की अवधारणा प्रतिनिधि लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूती प्रदान करती है। विमर्शी लोकतंत्र में नागरिकों के विचार–विमर्श से ही वैधानिक कानून निर्मित होता है। विमर्शी लोकतंत्र तार्किक विमर्श का आधार स्थापित करता है तथा व्यक्तिगत विकास का भी साधन बनता है।

(3) सहभागी लोकतंत्र : सहभागी लोकतंत्र का तात्पर्य है कि जनसाधारण सार्वजनिक नीतियों के निर्माण और संशोधन की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेता है। कैरल पेटमेन के अनुसार सहभागी लोकतंत्र मानवीय विकास में वृद्धि कर राजनीतिक कार्यकुशलता को

बेहतर बनाता है। साथ ही निर्णय प्रणाली के विकेन्द्रीयकरण और इसमें लोगों की भागीदारी से शासक और शासित के बीच का अंतर कम होता है। जयप्रकाश नारायण सहभागी लोकतंत्र के ही पक्षधर रहे।

(4) उग्र लोकतंत्र : उग्र अथवा आमूल परिवर्तनवादी लोकतंत्र का अर्थ है लोकतंत्र के जडों में मूलभूत परिवर्तन लाना। उग्र लोकतंत्र सामाजिक आन्दोलनों के द्वारा लोकतंत्र के तत्कालीन प्रधान्यवादी अवधारनाओं को चुनौती देता है। मूफ और लकलाउ के अनुसार उग्र लोकतंत्र का मुख्य उद्देश्य स्वतंत्रता और समानता की प्राप्ति है जिसके लिए दमन के विरूद्ध यह संघर्षशील रहता है।

आधुनिक लोकतंत्र की जयप्रकाश नारायण द्धारा **आलोचना**

वर्तमान लोकतन्त्र का विकास ब्रिटिश शासन की देन है। समय–समय पर भारतीय लोकतन्त्र की तीखी आलोचना होती रही है। जयप्रकाश ने प्रचलित लोकतन्त्र की अपेक्षा सहभागी लोकतन्त्र का जोरदार समर्थन किया है। जयप्रकाश नारायण आधुनिक लोकतंत्र के प्रबल आलोचक रहे। उन्होंने निम्न आधारों पर आधुनिक लोकतंत्र की आलोचना की है –

(क) नैतिक मूल्यों का ह्रास : जयप्रकाश का मानना था कि आधुनिक लोकतंत्र में नैतिकता का कोई स्थान नहीं है। सत्ता और शक्ति के सामने किसी भी अन्य नैतिक मूल्य पर आधुनिक लोकतंत्र का ध्यान नहीं जाता। आधुनिक लोकतंत्र में सत्य, अहिंसा, आदि नैतिक मूल्यों की आहूति सत्ता और शक्ति को यथास्थिति रखने के लिए की जाती है।

(ख) राजनीतिक और आर्थिक शक्ति का अत्यधिक केंन्द्रीयकरण : आधुनिक लोकतंत्र में जयप्रकाश ने राजनीतिक और आर्थिक शक्ति का अत्यधिक केंन्द्रीयकरण देखा। इस प्रकार का केंन्द्रीयकरण व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए हानिकारक है। बड़े पैमाने पर होते औद्योगीकरण का लाभ केवल पूँजीपति वर्ग को ही मिलता है। आधुनिक लोकतंत्र में सत्ता पे विराजमान वर्ग इस व्यवस्था को चलाते रहने में ही अपना तथा पूँजीपतियों का लाभ देखता है।

(ग) जनता की भागीदारी नहीं : जयप्रकाश नारायण के अनुसार आधुनिक लोकतंत्र में जनता की भागीदारी नहीं है। आधुनिक लोकतंत्र का संचालन वास्तविकता में उलटे पिरामिड की तरह होता है और इसका आधार अत्यंत संकचित है। वयस्क मताधिकार तथा हर वयस्क व्यक्ति के चुनाव में खड़े होने के अधिकार से लोकतंत्र का आधार विस्तृत नहीं हुआ है। ऐसी व्यवस्था लोकतांत्रिक अल्पतंत्र को स्थापित करने में सहायक हुई है।

(घ) दोषपूर्ण चुनाव प्रणाली : वर्तमान चुनाव प्रणाली के दोष को उजागर करते हुए जयप्रकाश का कहना है कि इस व्यवस्था में उम्मीदवारों को कुलों का बहुमत प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। किसी भी लोकसभा या विधानसभा क्षेत्र में सबसे अधिक मत पाने वाला उम्मीदवार विजयी बन जाता है। ऐसी परिस्थिति में यह भी संभव होता है कि जिस उम्मीदवार को आधी से अधिक जनता ने मत ना दिया हो, वह भी विजयी बन सकता है।

(ङ) राजनीतिक दलों का उद्देश्य सत्ता प्राप्त करना और उस पर काबिज रहना है : जयप्रकाश के अनुसार आधुनिक लोकतंत्र में राजनीतिक दल चुनाव से पूर्व दल का घोषणा–पत्र प्रस्तुत तो करते हैं किंतु वास्तविकता में यह सब जनता को दिग्भ्रमित करने के लिए होता है। राजनीतिक दल चुनाव प्रचार के समय बड़े उद्योगपतियों से आर्थिक मदद लेते हैं और सत्ता पाने के उपरांत उनके ही हितों के लिए कार्य करते हैं। चुनाव में जीतने के बाद आम जनता को दिए वचन भूल वे सत्ता पे काबिज रहने के उपायों में जुट जाते हैं।

(च) राजनीतिक दल जनता की भावनाओं को भड़काते हैं : जयप्रकाश के अनुसार राजीनतक दल सत्ता के लोभ में जातिवाद, भाषावाद, सम्प्रादायवाद और क्षेत्रवाद को बढ़ावा देते हैं। जाति, भाषा, क्षेत्र और सम्प्रदाय से उत्पन्न मतभेदों से लाभ उठाना राजनीतिक दलों का उद्देश्य बन चुका है। ऐसी प्रवृत्ति राष्ट्रीय एकता के विरूद्ध है।

जयप्रकाष नारायण के लोकतांत्रिक विचार

जयप्रकाश नारायण लोकतंत्र के हिमायती थे, परन्तु वे सच्चे और व्यवहारिक लोकतंत्र के हिमायती थे। किन्तु दलीय राजनीति के पक्ष में नहीं थे। वे लोकतंत्र के व्यवहारिक गुणों को धरातल पर उतरा हुआ देखना चाहते थे। लोकतंत्र के संबंध में कहा गया है कि जनता द्वारा जनता का शासन अर्थात् जनप्रतिनिधियों द्वारा राष्ट्र का शासन। सुनने में एवं इसके अर्थ निकालने पर उसका बड़ा अच्छा भाव में उभरता है। परन्तु वास्तविकता पर गौर करें तो हम देख सकते हैं कि आज तक जनता कहीं भी अपने को शासित नहीं कर सकी है और न यह सम्भव है। सरकारों का संचालन सदा ही थोड़े विशिष्ट अभिजात्य कुलों के हाथ में रहा है, जिसका साफ मतलब है बहुतों पर थोड़ों का शासन अर्थात्, कुलीन तंत्रात्मक शासन व्यवस्था। जयप्रकाश नारायण ऐसे लोकतंत्र के पक्षपाती नहीं थे। जयप्रकाश नारायण का सोच था कि लोकतंत्र की समस्या नैतिक समस्या है। संविधान, शासन प्रणाली, दल, निर्वाचन – सभी लोकतंत्र के अनिवार्य अंग हैं। किंतु जब तक लोगों में नैतिकता की भावना नहीं रहेगी, तब तक लोगों का आचार–विचार ठीक नहीं रहेगा और तब तक अच्छे संविधान और राजनीतिक प्रणाली के बावजूद लोकतंत्र ठीक से काम नहीं कर सकता। लोकतंत्र के सफल रूप संचालित करने हेतु निम्नांकित नैतिक गुण और मानसिक प्रवृत्तियाँ आवश्यक माना है –

1. सत्य के प्रति संवेदनशीलता व निष्ठा : जयप्रकाश नारायण का मानना है कि सत्य के प्रति संवेदनशीलता व निष्ठा लोकतंत्र के आवश्यक है। इस आशय में जयप्रकाश नारायण का गाँधीवादी स्वरूप सामने आता है जो कर्तव्य को परिणाम से अधिक महत्ता देता है। गाँधीजी की ही तरह जयप्रकाश नारायण भी नैतिक मूल्यों को स्थापित करने के समर्थक रहे हैं। उन्होंने इस बात पर जोर डाला कि लोकतंत्र की सफलता के लिए लोगों में सत्य आचरण के प्रति आस्था होना जरूरी है।

2. हिंसा से विरक्ति : जयप्रकाश का मानना था कि हिंसा के वातावरण में लोकतंत्र की सफलता की आशा करना व्यर्थ है। गांधीवादी सोच से प्रेरित इस विशेषता का आशय है कि हिंसा किसी भी सामाजिक व्यवस्था के प्रतिकूल है।

3. स्वतंत्रता से प्रेम और दमन और उत्पीड़न का प्रतिरोध करने का साहस : जयप्रकाश नारायण का मानना था कि लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि लोग स्वतंत्रता के प्रति आस्था व प्रेम रखें और दमन तथा उत्पीड़न से लड़ने के लिए आगे बढें। उत्पीड़न और दमन से लड़ने का साहस ही सही मायने में स्वतंत्रता प्रदान करने की क्षमता देता है। इस प्रकार हम पाते हैं कि जयप्रकाश पर मार्क्सवादी सोच का प्रभाव परिलक्षित होता है।

4. सहयोग का भाव : लोगों के बीच का आपसी सहयोग रहना लोकतंत्र का आधार है। जयप्रकाश नारायण का मानना था कि अगर लोगों में आपसी सहयोग की भावना ना हो तो लोकतंत्र का सफल होना मुश्किल होगा। आपसी सहयोग सामाजिक मतभेदों को कम करने की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है।

5. दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता : जयप्रकाश नारायण ने दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता को लोकतंत्र का मूल आधार माना है। उनका कहना था कि हमें दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता रखनी चाहिए भले ही हम उनके विचारों से सहमत ना हों। ऐसा करने से लोगों के विचार बिना दमन के सामने आएँगे जो लोकतंत्र के लिए उपयुक्त साबित होगा।

6. उत्तरदायित्व वहन करने के लिए तैयार रहना : जयप्रकाश नारायण का कहना था कि लोगों में अपने उत्तरदायित्व वहन करने के प्रति संवेदनशील व तैयार रहना जरूरी है। उत्तरदायित्व वहन करने की भावना के बिना लोकतंत्र एक तर्कविहीन परिकल्पना ही रह जाएगी। लोगों को इस बात का ज्ञान होना आवश्यक है कि उनको मिले अधिकार उनके द्वारा उत्तरदायित्व वहन करने के निर्वाह पर आश्रित हैं।

7. मानव एकता में विश्वास : जयप्रकाश नारायण मानते थे कि लोगों में धर्म, जाति और समुदाय से पैदा हुई मतभेद लोकतंत्र के विरूद्ध हैं। मानव एकता में विश्वास रखना लोकतंत्र की सफलता के लिए अनिवार्य है। आपसी मतभेद से समाज और देश की प्रगति शिथिल पड़ जाती है तथा दलों की निहित मतभेद पर आधारित राजनीति को बल मिलता है।

8. सादा जीवन–यापन करने की क्षमता : गाँधीवाद को पुनः उजागर करते हुए जयप्रकाश नारायण ने यह आह्वान किया कि लोकतंत्र की सफलता हेतु लोगों को सादा जीवन–यापन करने की क्षमता रखना जरूरी है। सादा–जीवन का तात्पर्य है कि लोगों को अपनी आवश्यकताएँ कम रखनी चाहिए और जरूरत मात्र के साधन ही अर्जन करना चाहिए।

9. सार्वजनिक हित के साथ अपने हित की संगति बैठा लेने को तैयार रहना : जयप्रकाश नारायण का मानना था कि एक स्वस्थ एवं अच्छे लोकतंत्र के लिए लोग का स्वयं के हित सिद्धि के लिए सार्वजनिक हितों की अनदेखी ना करे, बल्कि लोगों को सार्वजनिक हित के साथ अपने हित की संगति को बैठा लेने को तैयार रहना चाहिए। तभी लोकतंत्र सुरक्षित, प्रगतिशील हो सकता है।

निश्चित रूप से ऐसे गुण जन्मजात नहीं होते हैं, परन्तु हम इसे शिक्षण, जीवन जीने की शैली एवं कर्मों के द्वारा इसे मानव स्वभाव में लाया जा सकता है और तभी लोकतंत्र के विकास के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ तैयार हो सकती हैं और लोकतंत्र के अधिकतम से अधिकतम सच्चे और व्यवहारिक रूप को हासिल किया जा सकता है। जयप्रकाश नारायण के लोकतंत्र के प्रति इस सोच का मूल वजह यह था कि उनका मानना था कि लोकतंत्र के आदर्श रूप को पूर्णरूप से कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता है। परन्तु वह इस दिशा में निर्धारित लक्ष्य पाने के लिए यथासंभव प्रयत्न तो किया ही जा सकता है। देखा जाए तो लोकतंत्र के प्रति जयप्रकाश नारायण का यह अवधारणा बहुत हद तक गाँधी के विचारों से अनुप्रेरित था।

1972 में जयप्रकाश ने लिखा कि भारत में साक्षरता की कमी है, बेरोजगारी की समस्या विकराल है, भ्रष्टाचार अपने चरम पर है, शैक्षणिक मोर्चे पर दिशाविहीनता है। ऐसे हालात में लोकतंत्र का कायम रहना किसी चमत्कार से कम नहीं है। अगर भारत में फिर भी लोकतंत्र कायम है तो इसका श्रेय उन्होंने निम्नांकित घटनाओं को दिया –

(क) गाँधी जी द्वारा मार्गदर्शित अहिंसक स्वतंत्रता आन्दोलन ने भारतीय लोकतंत्र को एक मजबूत जनाधार प्रदान किया।

(ख) गाँधीजी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का संभ्रांतवादी से जनसाधारण के संगठन के रूप में परिवर्तन।

(ग) लोक आचरण तथा लोकतांत्रिक मूल्यों के मापदंड जो दादा भाई नौरोजी से महात्मा गाँधी के समय तक स्थापित होते रहे।

1970 के दशक में भारतीय लोकतंत्र की स्थिति पर जयप्रकाश ने चिंता प्रकट की। इंदिरा गाँधी के द्वारा लोकतांत्रिक केंद्रीयकरण के प्रयास को जयप्रकाश ने कांग्रेस और भारतीय लोकतंत्र दोनों के लिए हानिकारक समझा। जयप्रकाश का मानना था कि मतभेद और असहमति समाज की प्रगति के लिए आवश्यक उत्प्रेरक हैं। मतभेद के बिना समाज स्थिर, गतिहीन तथा मृतप्राय बन जाता है। साथ ही यद्यपि प्रेस की स्वतंत्रता पर खुले तौर पर प्रतिबन्ध नहीं है किन्तु उनको अनुशासित रखने के लिए सरकार अन्य प्रच्छन्न उपाय अपनाती रहती है। इसके साथ ही लोकतांत्रिक मूल्यों का हार भी चिंताजनक रूप से सामने था। इन कारणों से ही जयप्रकाश संपूर्ण क्रांति की अवधारणा की ओर बढ़ चले और 5 जून 1974 को पटना में छात्रों के विशाल सभा को संबोधित करते हुए संपूर्ण क्रांति का कार्यक्रम प्रस्तावित किया।

निष्कर्ष

राष्ट्रवाद और लोकतंत्र – ये दो प्रश्न जयप्रकाश के राजनीनतक जीवन के मूल प्रश्न रहे। जयप्रकाश नारायण के लोकतांत्रिक विचार मुख्य धारा के विपरीत प्रतीत होते हैं। यदि हम आधुनिक लोकतंत्र से इनके विचारों की तुलना करें तो यह बात सामने आती है कि सत्ता और शक्ति की होड़ में राजनेता जनता को विस्मृत कर अधिक से अधिक शक्ति का अर्जन करने में लिप्त हो जाते हैं। इस प्रक्रिया से उत्पन्न राजनीतिक और आर्थिक केन्द्रीयकरण जनता को लोकतंत्र से और दूर कर देती है। दलीय राजनीति में सत्ता को प्राप्त कर उस पर बने रहना ही राजनेताओं का लक्ष्य बन गया है। जनता मतदान तो करती है किन्तु उनकी भूमिका यहीं तक सीमित रह जाती है। ऐसी स्थिति लोकतंत्र के प्रतिकूल है। इन समस्याओं के समाधान के तौर पर जयप्रकाश ने अपने लोकतंत्र के विचार जनता के समक्ष रखे। लोकतंत्र के अन्य सिद्दांतों के विपरीत जयप्रकाश का लोकतंत्र सही मायने में जनता से जुड़ने की बात करता है। जनता की सहभागिता को लोकतंत्र का आधार बना उन्होंने राष्ट्रीय एकता तथा सामाजिक और आर्थिक समानता का ऐसा प्रारूप सामने रखा जो निश्चय ही एक सामान्य संकल्प की ओर अग्रसर करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जयप्रकाश नारायण ने जहाँ लोकतंत्र में होने वाले आडम्बरों, जो की सत्ता को केन्द्रीयकरण और विशिष्टकरण करते हुए आम जनता की पहुँच एवं प्रभाव को कम करता था, वे उसके विरूद्ध थे। जयप्रकाश नारायण का लोकतांत्रिक विचारधारा के विविध आयाम ने मानवता, उनकी स्वतंत्रता एवं उनके समस्या निवारण पहलू पर विशेष जोर दिया था और यह सभी भारतीय परम्परा एवं संस्कृति के अनुरूप है न कि आयातित पश्चिमी लोकतांत्रिक विचारधारा।

संदर्भ

अग्रवाल, ओम प्रकाश : जयप्रकाश के व्यक्ति और विचार, पूर्ति प्रकाशन, राजघाट, नई दिल्ली, 1975, पृ. 128–33.

मेहता, बी.आर., फाउनडेशन ऑफ इंडियन पॉलिटिकल थॉटः एन इंटरप्रेटेशन, मनोहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010.

नारायण, जयप्रकाश : भारतीय राज–व्यवस्था की पुनर्रचनाः एक सुझाव, अखिल भारत सेवा संघ प्रकाशन, काशी, 1959.

नारायण, जयप्रकाश : सोशलिज्म, सर्वोदय एण्ड डेमोक्रेसी, सं0–विमल प्रसाद, बॉम्बे एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1964, पृ. 29.

नारायण, जयप्रकाश : मेरी विचार यात्रा, भाग–1, 11, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2002, पृ. 28–29.

शरद, ओंकार : जयप्रकाश नारायण, साहित्य भवन प्र0लि0, इलाहाबाद, 1977, पृ. 108.

समादार, रणवीर : जयप्रकाश नारायण एंड दी प्रॉब्लेम ऑफ रिप्रेजेटेटिव डेमोक्रेसी, इकोनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 43(31), 2–8 अगस्त, 2008, पृ. 49–58.